



2026:AHC:31226

इलाहाबाद उच्च न्यायालय

आवेदन अंतर्गत धारा 528 बीएनएसएस संख्या - 18266 सन् 2025

प्रदीप कुमार

....आवेदक(गण)

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और 2 अन्य

....विपक्षी(गण)

आवेदक(गण) के अधिवक्ता

: एजाज अहमद खान, मो. मोनिस

विपक्षी(गण) के अधिवक्ता

: जी.ए.,हरि नाथ चौबे

न्यायालय संख्या - 71

माननीय न्यायमूर्ति राजीव लोचन शुक्ला

1. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री मोहम्मद मोनिस, विपक्षी संख्या 2 व 3 के विद्वान अधिवक्ता श्री हरि नाथ चौबे, राज्य के लिये विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता, श्री शशि धर पांडे को सुना गया तथा अभिलेख पर प्रस्तुत सामग्री का अवलोकन किया गया।

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



2. इस आवेदन में, भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता की धारा 175(3), थाना शिवली, जिला कानपुर देहात के तहत की कार्यवाहियों से उत्पन्न आपराधिक परिवाद वाद संख्या 1583 सन् 2024 (प्रदीप कुमार बनाम मोहित कुमार व अन्य) में विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, कानपुर देहात द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 18.9.2024 को चुनौती दी गई है।

3. बी.एन.एस.एस. की धारा 175(3) के तहत दिए गए आवेदन में यह आरोप लगाया गया है कि 29.7.2024 को रात लगभग 08:30 बजे, जब मामले का घायल व्यक्ति संदीप शौच के लिए गया था, तो पुरानी रंजिश के कारण विपक्षी संख्या 2 और 3 ने उसे पकड़ लिया तथा फिर उसके दाहिने पैर को कंटीले तार से बांध दिया गया और उसके बाद एक मोटरसाइकिल से बांधकर उसे काफी दूर तक घसीटा गया। आवेदन में आगे यह भी आरोप लगाया गया है कि घायल संदीप का पूरा पैर विच्छेदित हो गया, जिसके बाद आरोपी संदीप को वहीं छोड़कर भाग गए। कहा गया है कि घटना की जानकारी मिलने पर आवेदक परिवार के अन्य सदस्यों के साथ मौके पर दौड़ा और देखा कि संदीप खून से लथपथ पड़ा था, फिर उसे थाना शिवली, जिला-कानपुर देहात ले जाया गया, जहां कोई कार्रवाई नहीं हुई, तत्पश्चात उसे हैलेट अस्पताल और फिर रावत पुर कैटोलॉजी अस्पताल ले जाया गया, जहां डॉक्टरों ने घायल के मामले में जवाब दे दिया जिसके बाद उसे एस.जी.पी.जी.आई. लखनऊ ले जाया गया, जहां आवेदन प्रस्तुत किए जाने के समय भी उसका इलाज चल रहा था। आवेदक कथित तौर पर विपक्षी संख्या 2 और 3 के घर यह उलाहना देने गया कि उन्होंने उसके भाई का पैर क्यों काट दिया, जिस पर विपक्षी संख्या 2 और 3 ने कथित तौर पर उसे गालियां दीं और धमकी दी कि आवेदक और उसके भाई दोनों को जान से मार दिया जाएगा। कहा गया है कि इस घटना की सूचना पुलिस अधीक्षक, जिला- कानपुर देहात को डाक के माध्यम से दी गई थी, हालांकि, जब कोई कार्रवाई नहीं हुई, तो बी.एन.एस.एस. की धारा 175(3) के तहत आवेदन प्रस्तुत किया गया।

4. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता का कथन है कि बी.एन.एस.एस. की धारा 175(3) के तहत उनके आवेदन को एक परिवाद के रूप में माना गया है और बी.एन.एस.एस. की धारा 223 के प्रावधानों के अनुसार विपक्षी संख्या 2 और 3 को नोटिस जारी किए गए हैं, तथा बी.एन.एस.एस.



की धारा 223 के तहत आवेदक का बयान दर्ज करने के लिए तिथि निर्धारित कर दी गई है। आवेदक के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, कानपुर देहात ने मनमाने ढंग से आवेदन को एक परिवाद मान लिया है, जबकि इस मामले में पुलिस अन्वेषण की आवश्यकता थी क्योंकि इसमें घटनास्थल का निरीक्षण, हमले में प्रयुक्त हथियार और अपराध में इस्तेमाल की गई मोटरसाइकिल की बरामदगी, आरोपियों की गिरफ्तारी और उनकी निशानदेही पर उपर्युक्त सामग्री की बरामदगी शामिल है। इसके लिए हिरासती पूछताछ की भी आवश्यकता है। आवेदक के विद्वान अधिवक्ता आगे कहते हैं कि विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, कानपुर देहात ने 2007 (59) एसीसी 739 में प्रतिवेदित **सुखवासी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य** के मामले में इस न्यायालय के निर्णय पर गलत तरीके से भरोसा किया है, जो कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के संबंध में था, और गलत तरीके से आवेदक के आवेदन को परिवाद मान लिया है। उनका तर्क है कि समान सिद्धांत बी.एन.एस.एस. की धारा 175(3) के तहत पारित आदेशों पर लागू नहीं होते हैं।

5. उक्त दलीलों का खंडन करते हुए, विपक्षी संख्या 2 और 3 के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि विद्वान मजिस्ट्रेट ने एक सकारण आदेश पारित किया है, अभिलेख पर उपलब्ध संपूर्ण सामग्री पर विधिवत विचार किया गया है और आवेदन को परिवाद के रूप में मानने के लिए विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा प्रयोग किया गया विवेकाधिकार, **सुखवासी (उपरोक्त)** के मामले में इस न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि के अनुसार है, जिसका पालन कई हालिया निर्णयों में भी किया गया है। वे 2021 (1) एडीजे 145 में प्रतिवेदित **लालाराम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य** के मामले में इस न्यायालय के निर्णय पर भरोसा करते हैं, जहां इस न्यायालय ने इस न्यायालय के साथ-साथ सर्वोच्च न्यायालय के विभिन्न निर्णयों के प्रभाव पर विचार करने के बाद, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 154(3) और 156(3) के तहत प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने की प्रक्रिया को नियंत्रित करने वाले कानूनी सिद्धांतों को संक्षेप में प्रस्तुत किया है, जिसमें मामला दर्ज कर अन्वेषण का निर्देश देने या आवेदन को परिवाद के रूप में मानने की विद्वान मजिस्ट्रेट की शक्तियां शामिल हैं।



6. विपक्षी संख्या 2 व 3 के विद्वान अधिवक्ता आगे तर्क देते हैं कि बी.एन.एस.एस. की धारा 175(3) के प्रावधान दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के प्रावधानों के समरूप हैं एवं दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के तहत शक्तियों के प्रयोग को नियंत्रित करने वाले कानूनी सिद्धांत, जैसा कि इस न्यायालय द्वारा **लाला राम (उपरोक्त)** के निर्णय में संक्षेपित किया गया है, इस मामले पर पूरी तरह से लागू होते हैं। उनका तर्क है कि **लाला राम (उपरोक्त)** में इस न्यायालय द्वारा संक्षेपित विधि की कसौटी पर परखने पर, आक्षेपित आदेश में कोई ऐसी कानूनी या तथ्यात्मक त्रुटि नहीं है, जिसके लिए बी.एन.एस.एस. की धारा 528 के तहत अपने असाधारण क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए इस न्यायालय के हस्तक्षेप की आवश्यकता हो।

7. विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता, श्री शशि धर पांडे ने भी आक्षेपित आदेश का समर्थन किया है और कहा है कि आवेदन को परिवाद के रूप में मानने के लिए विशिष्ट कारण दिए गए हैं और यह न्यायालय विद्वान मजिस्ट्रेट के तर्कों के स्थान पर अपने स्वयं के तर्कों को प्रतिस्थापित नहीं कर सकता है, और बी.एन.एस.एस. की धारा 528 के तहत संरक्षित न्यायिक समीक्षा/अधीक्षण की शक्तियों तथा बी.एन.एस.एस. की धारा 529 के तहत उच्च न्यायालय पर सौंपे गए दायित्व का प्रयोग करते हुए, विद्वान मजिस्ट्रेट के समाधान को प्रतिस्थापित नहीं किया जा सकता है।

8. मैंने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना और अभिलेख पर प्रस्तुत सामग्री का अवलोकन किया।

9. बी.एन.एस.एस. की धारा 175(3) के तहत दिए गए आवेदन में किए गए दावों के समर्थन में, ऐसा प्रतीत होता है कि आवेदक ने कुछ चिकित्सा रिपोर्टें दाखिल की हैं, जिन्हें इस आवेदन के अनुलग्नक संख्या 3 के रूप में संलग्न किया गया है, इसके साथ ही, पुलिस अधीक्षक, जिला कानपुर देहात को संबोधित दिनांक 9.8.2024 का एक पत्र भी प्रस्तुत किया गया है, ताकि मामला दर्ज करने और पुलिस अन्वेषण का निर्देश देने के लिए विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा अपनी शक्तियों का प्रयोग न किए जाने को उचित ठहराया जा सके। यह न्यायालय बी.एन.एस.एस. की धारा 175(3) के तहत आवेदन में उठाए गए तर्कों के गुण-दोष पर विचार नहीं कर रहा है। इस



न्यायालय के समक्ष उठाया गया एकमात्र कानूनी प्रश्न यह है कि क्या वर्तमान मामले में मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, कानपुर देहात ने बी.एन.एस.एस. की धारा 175(3) के तहत आवेदन को एक परिवाद के रूप में मानते हुए उचित आदेश पारित किया है। आक्षेपित आदेश के अवलोकन से यह स्पष्ट होगा कि विद्वान मजिस्ट्रेट ने आवेदन को परिवाद के रूप में मानने के लिए कुछ कारण दिए हैं। आक्षेपित आदेश में उल्लिखित कारणों को यहाँ नीचे उद्धृत किया जा रहा है:-

“प्रार्थना पत्र के कथनों के परिशीलन से विदित है कि प्रार्थी को घटना के तथ्यों एवं परिस्थितियों की पूर्ण जानकारी है। प्रार्थना पत्र में ऐसा कोई कथन वर्णित नहीं किया है जिससे कि कोई ऐसा साक्ष्य संकलित किया जाना हो, जो कि विवेचना कराए जाने के उपरांत ही संकलित किया जा सकता हो। प्रार्थना पत्र में कोई तकनीकी तथ्य निहित नहीं है। प्रार्थी अपना समस्त साध्य न्यायालय में प्रस्तुत कर सकता है। उल्लेखनीय है कि माननीय इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा सुखवासी बनाम उ०प्र० राज्य [2007 (6) एएलजे 424 (डीबी)] के मामले में अवधारित किया गया है कि धारा 156 (3) द०प्र०सं० के प्रार्थना पत्र का निस्तारण करते समय न्यायालय को विवेक शक्ति प्राप्त है और मजिस्ट्रेट प्रत्येक प्रार्थना पत्र पर प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराने के लिए बाध्य नहीं ही है।”

10. विद्वान मजिस्ट्रेट ने इस न्यायालय की एक खंडपीठ के **सुखवासी (उपरोक्त)** के मामले में दिए गए निर्णयों पर भरोसा किया है। **सुखवासी (उपरोक्त)** का निर्णय इस न्यायालय की एक वृहत पीठ को निम्नलिखित प्रश्न का निर्णय करने के लिए भेजे गए एक संदर्भ पर था:-

“क्या मजिस्ट्रेट दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के तहत प्रत्येक ऐसे आवेदन पर, जिसमें संज्ञेय अपराध के घटित होने के आरोप हों, प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने और पुलिस द्वारा उसका अन्वेषण किए जाने का आदेश देने के लिए बाध्य है, भले ही वे आरोप प्रथम दृष्टया वास्तविक प्रतीत न हों और तर्कसंगत न लगें, या वह इस मामले में न्यायिक विवेकाधिकार का प्रयोग कर सकता है और उपयुक्त मामलों में इसे 'परिवाद' के रूप में मानने या इसे खारिज करने का आदेश पारित कर सकता है?”



11. इस न्यायालय ने सुखवासी (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के विभिन्न निर्णयों और (2001) एसीसी 201 में प्रतिवेदित राम बाबू गुप्ता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य में इस न्यायालय की एक पूर्ववर्ती पूर्णपीठ के निर्णय को ध्यान में रखते हुए निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया था:-

"20. राम बाबू गुप्ता 'उपरोक्त' के मामले में पूर्णपीठ का निर्णय भी यह स्थापित करता है कि मजिस्ट्रेट दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के तहत दिए गए आवेदन को एक परिवाद के रूप में मान सकता है। यह निम्नलिखित टिप्पणियों से स्पष्ट होगा:-

"ऊपर उल्लिखित दूसरे प्रश्न पर आते हुए, यह तुरंत स्पष्ट किया जाना चाहिए कि न्यायालय को एक विशेष तरीके से कार्य करने के लिए सशक्त करने वाले प्रावधान और किसी पीड़ित व्यक्ति को न्यायालय या प्राधिकारी के समक्ष जाने का अधिकार देने वाले प्रावधान को अलग-अलग समझा जाना चाहिए और उन्हें आपस में मिलाया नहीं जाना चाहिए। जबकि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 154, 155 की उपधारा (1) और धारा 156 की उपधारा (2), किसी पीड़ित व्यक्ति को पुलिस के पास जाने का अधिकार प्रदान करती हैं, वहीं धारा 156(3) एक मजिस्ट्रेट को दी गई स्थिति में एक विशेष तरीके से कार्य करने के लिए सशक्त करती है। इसलिए, यह अभिनिर्धारित करना संभव नहीं है कि जहाँ न्यायालय के समक्ष केवल दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के तहत शक्तियों के प्रयोग की प्रार्थना करते हुए एक साधारण आवेदन दायर किया जाता है, तो वह केवल एक आवेदन ही रहेगा और परिवाद की प्रकृति का नहीं होगा। ऊपर यह नोट किया गया है कि मजिस्ट्रेट को परिवाद में लगाए गए आरोपों पर हमेशा अपना विवेक लगाना होता है, जहाँ वह दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के तहत अपनी शक्तियों का उपयोग कर सकता है। इस संबंध में, यह तुरंत जोड़ा जा सकता है कि जहाँ किसी आवेदन में कोई शिकायतकर्ता ऐसे तथ्यों का उल्लेख करता है जो संज्ञेय अपराध का गठन करते हैं लेकिन त्रुटिपूर्ण प्रार्थना करता है, तो ऐसा आवेदन परिवाद होना बंद नहीं होगा और न ही मजिस्ट्रेट इसे परिवाद मानने से इनकार कर सकता है, भले ही उसमें ज्ञात या अज्ञात आरोपियों के विचारण की कोई प्रार्थना न की गई हो। मजिस्ट्रेट को ऐसे तथ्यों से निपटना होता है जो



संज्ञेय अपराध का गठन करते हैं और सभी व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए ऐसा आवेदन भी एक परिवाद होगा। यह न्यायालय सुरेश चंद जैन (उपरोक्त) में दी गई निम्नलिखित टिप्पणियों का संदर्भ देने से बेहतर कुछ नहीं कर सकता:-

"स्थिति इस प्रकार स्पष्ट है। कोई भी न्यायिक मजिस्ट्रेट, अपराध का संज्ञान लेने से पहले, संहिता की धारा 156(3) के तहत अन्वेषण का आदेश दे सकता है..... केवल उसके बाद ही संहिता के अध्याय XII में परिकल्पित आगे के कदम उठा सकता है।

21. आपराधिक विविध आवेदन संख्या 7484 सन् 2004 मोहन शुक्ला व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य में माननीय न्यायमूर्ति श्री अमर सरन, आपराधिक विविध आवेदन संख्या 671 सन् 2007 राम सबद बनाम सत्र न्यायाधीश, बहराइच व अन्य में माननीय न्यायमूर्ति श्री आलोक सिंह ने भी यह अभिनिर्धारित किया है कि मजिस्ट्रेट को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के तहत किसी आवेदन को 'परिवाद' के रूप में मानने की शक्ति प्राप्त है।

22. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के तहत आवेदन अब बहुत अधिक संख्या में आ रहे हैं। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के प्रावधानों का उपयोग संयम से किया जाना चाहिए। जब तक कि न्याय की विफलता जैसी कोई असामान्य और असाधारण बात न हो, जो पुलिस को मामला दर्ज करने का निर्देश देने का औचित्य साबित करती हो, तब तक इनका उपयोग नहीं किया जाना चाहिए। ऐसे आवेदनों की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए क्योंकि कानून उन्हें परिवाद दायर करने का एक वैकल्पिक उपाय प्रदान करता है, इसलिए सामान्यतः दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के प्रावधानों का लाभ उठाने के लिए इस मार्ग को अपनाने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए।

23. अतः संदर्भ का उत्तर इस प्रकार दिया जाता है कि मजिस्ट्रेट के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के तहत आवेदन को स्वीकार करना अनिवार्य नहीं है और ऐसा कोई कानूनी अधिदेश नहीं है। वह अपने विवेकाधिकार से आवेदन को स्वीकार कर भी सकता है और नहीं भी। संदर्भ के दूसरे भाग का उत्तर भी इस प्रकार दिया जाता है कि मजिस्ट्रेट के पास

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के तहत दिए गए आवेदन को परिवाद के रूप में मानने का विवेकाधिकार है।"

12. यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि बी.एन.एस.एस. की धारा 175(3) और 175(4) के प्रावधान बिल्कुल वैसे ही नहीं हैं जैसे कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के तहत है। सुगमता के लिए, बी.एन.एस.एस. की धारा 175(3) व 175(4) और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के प्रावधानों को नीचे उद्धृत किया जा रहा है:-

"भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता, 2023 की धारा 175(3)

(3) धारा 210 के तहत सशक्त कोई भी मजिस्ट्रेट, धारा 173 की उपधारा (4) के तहत किए गए एक हलफनामे द्वारा समर्थित आवेदन पर विचार करने के पश्चात, और ऐसी जांच करने के पश्चात जैसा वह आवश्यक समझे तथा पुलिस अधिकारी द्वारा इस संबंध में प्रस्तुत किए गए प्रतिवेदन पर विचार करने के पश्चात, उपर्युक्त प्रकार के अन्वेषण का आदेश दे सकता है।

भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता, 2023 की धारा 175(4)

धारा 210 के तहत सशक्त कोई भी मजिस्ट्रेट, किसी लोक सेवक के विरुद्ध उसके शासकीय कर्तव्यों के निर्वहन के अनुक्रम में उत्पन्न होने वाले किसी परिवाद को प्राप्त करने पर, अन्वेषण का आदेश दे सकता है, जो निम्नलिखित के अधीन होगा-

(क) उसके उच्चतर (वरिष्ठ) अधिकारी से घटना के तथ्यों और परिस्थितियों को समाविष्ट करने वाली रिपोर्ट प्राप्त होने; और

(ख) लोक सेवक द्वारा उन परिस्थितियों के संबंध में किए गए दावों पर विचार करने के पश्चात जिसके कारण ऐसी कथित घटना हुई थी।

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 156 (3)

156. संज्ञेय मामले का अन्वेषण करने की पुलिस अधिकारी की शक्ति।

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



(1)...

(2)...

(3) धारा 190 के तहत सशक्त कोई भी मजिस्ट्रेट उपर्युक्त प्रकार के अन्वेषण का आदेश दे सकता है।"

13. ऊपर संदर्भित दोनों प्रावधानों की तुलना से यह स्पष्ट होगा कि बी.एन.एस.एस. की धारा 175(3) के प्रावधानों ने विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा शक्तियों के प्रयोग के दायरे का विस्तार किया है और विद्वान मजिस्ट्रेट को ऐसी जांच करने का विवेकाधिकार दिया है जो वह आवश्यक समझे और पुलिस अधिकारी द्वारा प्रस्तुत किए गए प्रतिवेदनों को भी ध्यान में रखते हुए, ऐसे अन्वेषण का आदेश दे। बी.एन.एस.एस. की धारा 175(4) एक ऐसा नया प्रावधान पेश करती है जो दंड प्रक्रिया संहिता के तहत मौजूद नहीं था। यह आज्ञापक करता है कि, जहाँ किसी लोक सेवक के विरुद्ध उसके शासकीय कर्तव्यों के निर्वहन से कथित तौर पर उत्पन्न होने वाले या उसके अनुक्रम में किए गए कार्यों के संबंध में परिवाद किया जाता है, वहाँ विद्वान मजिस्ट्रेट लोक सेवक के वरिष्ठ प्राधिकारी से प्रासंगिक तथ्यों और परिस्थितियों का विवरण देने वाली रिपोर्ट प्राप्त करने के पश्चात ही, और लोक सेवक को उन परिस्थितियों को स्पष्ट करने वाले अपने कथन प्रस्तुत करने का अवसर प्रदान करने के पश्चात ही, जिसके कारण कथित घटना हुई, पुलिस अन्वेषण का आदेश दे सकता है। न्यायालय की राय में, बी.एन.एस.एस. में लाए गए ये बदलाव विद्वान मजिस्ट्रेटों को प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने में पुलिस की उदासीनता की शिकायत करने वाले लोगों द्वारा प्रस्तुत आवेदनों से निपटने के लिए एक अधिक मजबूत तंत्र प्रदान करने के लिए हैं, लेकिन साथ ही, मजिस्ट्रेट को ऐसी जांच करने का पर्याप्त विवेकाधिकार भी देते हैं जिसे वे उचित समझें, जबकि पुलिस को भी विद्वान मजिस्ट्रेट के समक्ष अपना पक्ष रखने का अवसर देते हैं। कानून द्वारा ऐसी शक्ति प्रदान किए जाने का उद्देश्य उन झूठे और तुच्छ आवेदनों पर अंकुश लगाना है, जो किसी व्यक्ति, विशेष रूप से अपने शासकीय कर्तव्यों का निर्वहन कर रहे लोक सेवक को परेशान करने के लिए किए जा सकते हैं। बी.एन.एस.एस. की धारा 175(3) के तहत आवेदन के समर्थन में एक शपथ पत्र दाखिल करने की वैधानिक

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



अनिवार्यता भी विधायिका के उस आशय को इंगित करती है जिसके तहत विद्वान मजिस्ट्रेट के समक्ष झूठा या तुच्छ दावा करने वाले व्यक्ति को दंडित करने के उपकरण विद्वान मजिस्ट्रेट को प्रदान किए गए हैं।

14. सर्वोच्च न्यायालय ने 2015 (6) एससीसी 287 में प्रतिवेदित प्रियंका श्रीवास्तव व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य के मामले में, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के तहत उन सभी आवेदनों का आवेदक द्वारा शपथित हलफनामे द्वारा समर्थित होना अनिवार्य कर दिया था, जिसने विद्वान मजिस्ट्रेट के क्षेत्राधिकार के प्रयोग की मांग की थी। सर्वोच्च न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के प्रावधान के दुरुपयोग को ध्यान में रखते हुए यह टिप्पणी की कि कुछ लोगों को केवल परेशान करने के लिए, बिना कोई जिम्मेदारी लिए नियमित तरीके से आवेदन दाखिल किए जा रहे थे। उपरोक्त निर्णय के पैरा संख्या 26 और 27 में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की है:-

"26. इस स्तर पर यह कहना उचित प्रतीत होता है कि धारा 156(3) के तहत शक्ति के प्रयोग के लिए न्यायिक विवेक का प्रयोग आवश्यक है। इसमें विधि का न्यायालय शामिल है। यह संहिता की धारा 154 के स्तर पर पुलिस द्वारा कदम उठाया जाना नहीं है। कोई वादी अपनी सनक पर मजिस्ट्रेट के प्राधिकार का आह्वान नहीं कर सकता है। साफ नियत से आने वाले एक सिद्धांतवादी और वास्तव में पीड़ित नागरिक को उक्त शक्ति का आह्वान करने के लिए निर्बाध पहुंच प्राप्त होनी चाहिए। यह नागरिकों की रक्षा करता है, लेकिन जब विकृत मुकदमेबाज अपने साथी नागरिकों को परेशान करने के लिए इस मार्ग को अपनाते हैं, तो उसे रोकने और उस पर अंकुश लगाने के प्रयास किए जाने चाहिए।

27. हमारी सुविचारित राय में, इस देश में अब वह समय आ गया है जहां दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के तहत दिए गए आवेदनों को उस आवेदक द्वारा विधिवत रूप से शपथित हलफनामे द्वारा समर्थित होना चाहिए जो मजिस्ट्रेट के क्षेत्राधिकार का उपयोग करना चाहता है। इसके अलावा, किसी उपयुक्त मामले में, विद्वान मजिस्ट्रेट के लिए यह सलाह योग्य होगा कि वह सच्चाई को सत्यापित करे और साथ ही वह आरोपों की सत्यता को भी

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



सत्यापित कर सकता है। यह हलफनामा आवेदक को अधिक जिम्मेदार बना सकता है। हम ऐसा कहने के लिए मजबूर हैं क्योंकि इस प्रकार के आवेदन बिना किसी जिम्मेदारी के, केवल कुछ व्यक्तियों को परेशान करने के लिए नियमित तरीके से दाखिल किए जा रहे हैं। इसके अलावा, यह और भी अधिक परेशान करने वाला और चिंताजनक हो जाता है जब कोई ऐसे लोगों को निशाना बनाने की कोशिश करता है जो किसी वैधानिक प्रावधान के तहत आदेश पारित कर रहे हैं, जिन्हें उक्त अधिनियम के ढांचे के तहत या भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत चुनौती दी जा सकती है। लेकिन यह किसी आपराधिक न्यायालय में अनुचित लाभ उठाने के लिए नहीं किया जा सकता, मानो कोई हिसाब बराबर करने पर तुला हो। हम पहले ही यह इंगित कर चुके हैं कि धारा 156(3) के तहत याचिका दायर करते समय धारा 154(1) और 154(3) के तहत पूर्व आवेदन होने चाहिए। आवेदन में इन दोनों पहलुओं को स्पष्ट रूप से बताया जाना चाहिए और इस आशय के आवश्यक दस्तावेज दाखिल किए जाने चाहिए। यह निर्देश देने का औचित्य कि धारा 156(3) के तहत आवेदन एक हलफनामे द्वारा समर्थित हो, इसलिए है ताकि आवेदन करने वाला व्यक्ति सचेत रहे और यह भी प्रयास करे कि कोई झूठा हलफनामा न दिया जाए। ऐसा इसलिए है क्योंकि एक बार हलफनामा झूठा पाए जाने पर, वह कानून के अनुसार अभियोजन के लिए उत्तरदायी होगा। यह उसे धारा 156(3) के तहत लापरवाही से मजिस्ट्रेट के प्राधिकार का उपयोग करने से रोकेगा। इसके अलावा, हमने पहले ही कहा है कि मामले के आरोपों की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए, विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा इसकी सत्यता को भी सत्यापित किया जा सकता है। हम ऐसा कहने के लिए मजबूर हैं क्योंकि वित्तीय क्षेत्र, वैवाहिक विवाद/पारिवारिक विवादों, वाणिज्यिक अपराधों, चिकित्सा लापरवाही के मामलों, भ्रष्टाचार के मामलों और ऐसे मामलों से संबंधित कई मामले दायर किए जा रहे हैं जहां आपराधिक अभियोजन शुरू करने में असामान्य देरी/शिथिलता होती है, जैसा कि ललिता कुमारी के मामले में उदाहरण के तौर पर बताया गया है। इसके अलावा, विद्वान मजिस्ट्रेट प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने में हुई देरी से भी अवगत होंगे।"



15. बी.एन.एस.एस. की धारा 175(3) के तहत आवेदन के समर्थन में हलफनामा दाखिल करने की आवश्यकता, जिसे अब कानून द्वारा अनिवार्य कर दिया गया है, बेईमान वादियों द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के प्रावधानों के दुरुपयोग के संबंध में सर्वोच्च न्यायालय की टिप्पणियों के अनुरूप प्रतीत होती है। हालाँकि, बी.एन.एस.एस. में ये परिवर्तन केवल उन आवेदनों में प्रक्रिया को विनियमित करने के लिए शामिल किए गए हैं, जहाँ कोई पीड़ित व्यक्ति मामला दर्ज करने या अन्वेषण का निर्देश मांगने के लिए मजिस्ट्रेट के समक्ष जाता है। हालाँकि, मजिस्ट्रेट द्वारा शक्तियों के प्रयोग को नियंत्रित करने वाले सिद्धांत, जब यह तय करने की बात आती है कि क्या अन्वेषण का आदेश दिया जाए या उस आवेदन को परिवाद के रूप में माना जाए, अभी भी वही हैं जो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के तहत हैं। इस न्यायालय के साथ-साथ सर्वोच्च न्यायालय ने विभिन्न निर्णयों में ऐसे मामलों में न्यायिक विवेकाधिकार का प्रयोग करने में विद्वान मजिस्ट्रेटों का मार्गदर्शन किया है और मजिस्ट्रेटों द्वारा शक्तियों के मनमाने प्रयोग को रोकने के सभी प्रयास किए हैं।

16. हाल ही में इस न्यायालय ने **लाला राम (उपरोक्त)** के मामले में चार प्रश्न विरचित किए थे, जिनमें से पहले तीन सीधे तौर पर दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के तहत मजिस्ट्रेट द्वारा क्षेत्राधिकार के प्रयोग के मूल बिंदु से संबंधित हैं। इस न्यायालय द्वारा विरचित प्रश्नों को यहाँ नीचे उद्धृत किया जा रहा है:-

"i) क्या प्रत्येक मामले में, जहाँ दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के तहत मजिस्ट्रेट के समक्ष संज्ञेय अपराध के होने का खुलासा करते हुए कोई आवेदन दिया जाता है, तो क्या मजिस्ट्रेट प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने और पुलिस द्वारा अन्वेषण का निर्देश देने के लिए कानूनी रूप से बाध्य है, या मजिस्ट्रेट के पास आवेदन को परिवाद वाद के रूप में दर्ज करने का आदेश पारित करने की शक्ति और क्षेत्राधिकार भी है?

ii) मजिस्ट्रेट को किन आधारों पर पुलिस द्वारा अन्वेषण कराने या परिवाद वाद के रूप में आगे बढ़ने का निर्णय लेना चाहिए?

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



iii) दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के तहत मजिस्ट्रेट द्वारा जारी निर्देश के अनुसरण में पुलिस द्वारा किए गए अन्वेषण और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 202(1) के तहत मजिस्ट्रेट द्वारा जारी निर्देश के अनुसरण में पुलिस द्वारा किए गए अन्वेषण की प्रकृति क्या है?

iv) क्या वर्तमान मामले में मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश को बनाए रखा जाना चाहिए या नहीं?"

17. सर्वोच्च न्यायालय और इस न्यायालय के विभिन्न निर्णयों में प्रतिपादित विधि के संपूर्ण दायरे पर विचार करने के पश्चात, इस न्यायालय ने लाला राम (उपरोक्त) में कानूनी सिद्धांतों को निम्नानुसार संक्षेपित किया:-

"(40.06). दोनों ही स्थितियों में, अर्थात् दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के तहत पुलिस अधिकारी द्वारा अन्वेषण का निर्देश जारी करना हो या संज्ञान लेना और इसे एक परिवाद वाद के रूप में दर्ज करना हो, मजिस्ट्रेट को अपना न्यायिक विवेक लगाना होगा। क्षेत्राधिकार का यांत्रिक या नियमित तरीके से प्रयोग नहीं किया जा सकता है। आदेश में केवल यह कथन पर्याप्त नहीं होगा कि उसने परिवाद, दस्तावेजों का अवलोकन कर लिया है और शिकायतकर्ता को सुन लिया है। मजिस्ट्रेट ने किन कारणों से प्रभावित होकर अन्वेषण का आदेश दिया या संज्ञान लिया, यह आदेश में परिलक्षित होना चाहिए, हालांकि उसके विचारों की विस्तृत अभिव्यक्ति न तो आवश्यक है और न ही अपेक्षित है।

(40.07). मजिस्ट्रेट द्वारा विवेकाधिकार का प्रयोग मूल रूप से मामले-दर-मामले न्याय के हित द्वारा निर्देशित होता है।

(40.08). तथापि, जहां किसी ऐसे अन्वेषण की आवश्यकता हो जो ऐसी प्रकृति का हो जो निजी परिवादी के लिए संभव न हो और जिसे केवल उसी पुलिस अधिकारी द्वारा किया जा सकता हो जिसे कानून ने अन्वेषण के लिए आवश्यक शक्तियां प्रदान की हैं, तो वहां



पुलिस अधिकारी द्वारा प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने और उसके अन्वेषण का निर्देश देने के विकल्प का प्रयोग किया जाना चाहिए, उदाहरण के लिए:-

(i) जहां आरोपियों का पूरा विवरण शिकायतकर्ता को ज्ञात न हो और उसे केवल अन्वेषण के परिणामस्वरूप ही सुनिश्चित किया जा सकता हो, या

(ii) जहां संदिग्ध स्थानों या व्यक्तियों पर छापा मारकर या तलाशी लेकर अपहृत व्यक्ति या चोरी की गई संपत्ति की बरामदगी की जानी आवश्यक हो, या

(iii) जहां आरोपियों के विरुद्ध सफल अभियोजन चलाने के उद्देश्य से साक्ष्य एकत्र और संरक्षित किया जाना आवश्यक हो, और इसे स्पष्ट करने के लिए कुछ ऐसे उदाहरण स्वरूप मामलों की कल्पना की जा सकती है जहां विचारण के दौरान न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए

(क) घटना स्थल को निश्चित करने के लिए खून से सनी मिट्टी का नमूना लिया जाना और उसे सीलबंद रखा जाना हो; या

(ख) वाद संपत्ति की बरामदगी की जानी हो और उसे सीलबंद रखा जाना हो; या

(ग) साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के तहत बरामदगी की जानी हो; या

(घ) पंचनामा तैयार किया जाना हो; या

(ङ) साक्षी ज्ञात न हों और अन्वेषण की प्रक्रिया के माध्यम से उनका पता लगाया जाना हो।

(40.09). जहां शिकायतकर्ता के पास सभी आरोपियों और उन साक्षियों का पूरा विवरण उपलब्ध हो जिनका परीक्षण किया जाना है, और न तो किसी बरामदगी की आवश्यकता हो और न ही किसी ऐसे महत्वपूर्ण साक्ष्य को एकत्र किया जाना आवश्यक हो जिसे केवल पुलिस ही कर सकती है, वहां सामान्यतः किसी "अन्वेषण" की आवश्यकता नहीं होगी और परिवाद वाद की प्रक्रिया अपनाई जानी चाहिए।

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



(40.10). ललिता कुमारी (उपरोक्त) के पैरा 120.6 के अंतर्गत आने वाले मामलों की श्रेणियां, अर्थात्-

(क) वैवाहिक विवाद/पारिवारिक विवाद

(ख) वाणिज्यिक अपराध

(ग) चिकित्सा लापरवाही के मामले

(घ) भ्रष्टाचार के मामले

(ङ) ऐसे मामले जहां आपराधिक परिवाद दर्ज करने में असामान्य देरी हुई हो आदि, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 202 के अंतर्गत आ सकते हैं।

(40.11). मजिस्ट्रेट को यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि प्राथमिक रूप से, संज्ञेय अपराध से जुड़े मामलों का अन्वेषण करना राज्य/पुलिस का कर्तव्य है। सामान्यतः, आरोपी के दोष को सिद्ध करने का भार राज्य पर होता है और यह दायित्व आरोपी के दोष को सभी उचित संदेहों से परे साबित करने का एक भारी भार है। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के तहत आवेदन को एक परिवाद वाद के रूप में मानकर, इस भार को राज्य से हटाकर अनुचित रूप से किसी व्यक्ति/शिकायतकर्ता पर नहीं डाला जाना चाहिए।

(40.12). दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 202(1) के तहत मजिस्ट्रेट के निर्देश के अनुसरण में पुलिस अधिकारी या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा किया जाने वाला अन्वेषण उसी प्रकार का अन्वेषण है जैसा कि दंड प्रक्रिया संहिता के अध्याय XII के तहत पुलिस अधिकारी द्वारा किया जाना आवश्यक होता है, जो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173(2) के अनुसार रिपोर्ट प्रस्तुत करने के साथ समाप्त होता है।

(40.13). दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) और धारा 202(1) के तहत पुलिस अधिकारी द्वारा किए गए अन्वेषण के बीच अंतर यह है कि पहला संज्ञान-पूर्व स्तर पर होता है और दूसरा संज्ञान-पश्चात स्तर पर होता है, जब मामला मजिस्ट्रेट के विचाराधीन होता है। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 202(1) के तहत अन्वेषण परिवाद की सत्यता या असत्यता का पता



लगाने के उद्देश्य से किया जाता है ताकि मजिस्ट्रेट को यह तय करने में मदद मिल सके कि आदेशिका जारी करके आरोपी के विरुद्ध आगे की कार्यवाही करने के लिए उसके पास पर्याप्त आधार है या नहीं; जबकि, पुलिस द्वारा स्वयं या दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के तहत मजिस्ट्रेट के निर्देशों के अधीन किए गए अन्वेषण की धारा 173(2) के तहत जांच रिपोर्ट का उद्देश्य मजिस्ट्रेट को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 190(1)(क) के तहत किसी अपराध का संज्ञान लेने में सक्षम बनाना है।

(40.14). एक बार जब मजिस्ट्रेट द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के तहत आवेदन पर संज्ञान ले लिया जाता है और वह अध्याय XV में सन्निहित प्रक्रिया को आरंभ कर देता है, तो वह दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के तहत संज्ञान-पूर्व स्तर पर वापस जाने के लिए सक्षम नहीं होगा।

(40.15). यदि मजिस्ट्रेट ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के तहत पुलिस अन्वेषण का आदेश नहीं दिया और मामले का संज्ञान ले लिया, तो यह मजिस्ट्रेट द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 202(1) के तहत पुलिस अन्वेषण का निर्देश देने की शक्ति के प्रयोग में कोई बाधा उत्पन्न नहीं करेगा।

41. इस निर्णय के पैरा 12 में विरचित बिंदु संख्या 1, 2 और 3 का उत्तर उपर्युक्त पैरा संख्या 40 के अनुसार दे दिया गया है।"

18. इस न्यायालय की राय में, विद्वान मजिस्ट्रेट के समक्ष मामला दर्ज करने और अन्वेषण की मांग करते हुए दायर किए गए आवेदन को एक परिवाद के रूप में मानने या प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने का निर्देश देने के निर्णय को प्रभावित करने वाले कारकों पर विचार, भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता की धारा 175(3) के तहत शक्तियों के प्रयोग के मामले में अभी भी वही हैं। अतः, लाला राम (उपरोक्त) के मामले में संक्षेपित कानूनी सिद्धांत, जैसा कि ऊपर उद्धृत किया गया है, बी.एन.एस.एस. की धारा 175(3) के तहत कार्यवाहियों पर भी लागू होते हैं। मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर ऊपर उद्धृत विद्वान मजिस्ट्रेट के विचार, इस न्यायालय की राय में, ऊपर उद्धृत लाला राम (उपरोक्त) के मामले के पैरा संख्या 40.06 और

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



40.07 के अनुरूप हैं। विद्वान मजिस्ट्रेट ने अपने कारण दिए हैं कि पुलिस अन्वेषण की आवश्यकता क्यों नहीं है। उन्होंने अपनी यह संतुष्टि दर्ज की है कि आवेदन में ऐसा कुछ भी उल्लेख नहीं किया गया है, जिसके लिए ऐसे साक्ष्य एकत्र करने की आवश्यकता हो जो केवल पुलिस अन्वेषण द्वारा ही किया जा सकता है। मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, जिला कानपुर देहात द्वारा पारित आक्षेपित आदेश पर विचार करते समय इस न्यायालय को प्रभावित करने वाला एक और कारक यह है कि आवेदक के भाई पर कथित हमला 19.07.2024 को होना बताया गया है। घटना की तारीख से डेढ़ वर्ष से अधिक का समय बीत जाने के बाद, किसी खुले स्थान पर कोई भी भौतिक साक्ष्य तार्किक रूप से शेष नहीं रहेगा, और इसलिए, इस स्तर पर खून से सनी मिट्टी की बरामदगी संभव नहीं होगी।

19. ये विचार बी.एन.एस.एस. की धारा 175(3) के तहत आवेदन में आवेदक के दावों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना हैं। विद्वान मजिस्ट्रेट ने उन्हीं सिद्धांतों को लागू करके, जो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के तहत शक्तियों के प्रयोग पर लागू होते थे, बी.एन.एस.एस. की धारा 175(3) के तहत आवेदन को एक परिवाद के रूप में सही माना है।

20. ऊपर की गई चर्चा के परिणामस्वरूप, मुझे विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश में कोई कानूनी या तथ्यात्मक त्रुटि, क्षेत्राधिकार संबंधी भूल या कोई विकृति नहीं मिलती है और इसके परिणामस्वरूप, यह आवेदन निष्फल होता है और **खारिज** किया जाता है।

21. लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं होगा।

(राजीव लोचन शुक्ला, न्यायमूर्ति)

फरवरी 12, 2026

सचिन